आत्मपूर्णतावाद BA Part2 Philosophy Hons paper 3 2019-20

Dr.Arti Kumari
Asso. Prof.
Deptt. Of Philosophy
B.N. College
T. M.B.U Bhagalpur

नैतिक मापदंड के रूप में आत्मपूर्णतावाद बौद्ध - नियमवाद के विरुद्ध एक आंदोलन के रूप में आंतरिक नैतिक निर्णय का अभ्युदय हुआ क्योंकि बाह्य नियमवाद नैतिकता के मानदंड के रूप में बाह्य आरोपित आदेश है। जबकि नैतिकता मनुष्य के अंदर की भावना है। सामान्यतः कर्म का औचित्य उसके परिणाम पर निर्भर करता है। अर्थात् जिस कर्म का परिणाम शुभ है वह कर्म उचित तथा जिस कर्म का परिणाम अशुभ है वह कर्म अनुचित होता है। जबकि इसके विपरीत कुछ नीतिशास्त्रियों का मानना है कि कर्म का औचित्य उसके परिणाम निर्भर न कर इसके Motive या प्रयोजन पर निर्भर करता है। इस तरह स्पष्ट है कि नैतिकता का संबंध उसके 'order' में न होकर उसके 'ought' में होता है। (चाहिए) में होता है। नैतिकता के इस अभिप्रेरणा के समर्थकों में अन्तः अनुभूतिवाद, कांट का कठोरतावाद, आत्मपूर्णतावाद एवं मूल्यवाद आदि प्रमुख हैं। जो नैतिकता का संबंध उसके कर्म के प्रयोजन पर निर्भर करता है।

आत्मपूर्णतावाद का सिद्धान्त वह सिद्धान्त है जहाँ आत्मा की पूर्णता को या आत्मसिद्धि को ही नैतिक मापदंड के रूप में स्वीकार किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार जिस कार्य से आत्मा की पूर्णता हो अथवा आत्मसिद्धि प्राप्त हो वही कार्य नैतिक दृष्टि से उचित है। इससे स्पष्ट है कि आत्मा की पूर्णता इन्द्रिय सुख वाद्य नियम वाद और बुद्धि के आदेशों (कठोरतावाद) में संभव नहीं है। आत्मपूर्णतावाद की इस तरह व्यक्ति स्वभावतः सुख की प्राप्ति चाहता है और उसी कार्य को उचित समझता है जिससे सुख की प्राप्ति

है। दूसरी तरफ कठोरतावाद बुद्धि के आदर्शों को ही नैतिक आदर्श के रूप में स्वीकार करता है जहाँ भावनाओं का पूर्ण नियंत्रण बुद्धि के आदर्शों द्वारा स्वीकार किया गया है। इसके विपरीत आत्मपूर्णतावादी यह मानते हैं कि सुखवाद और कठोरतावाद दोनों ही एकांगी सिद्धान्त है क्योंकि जहाँ सुखवाद का लक्ष्य सुख की प्राप्ति अर्थात् उनके अनुसार सुख ही श्रेयस्कर है, मानव जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता। क्योंकि मनुष्य केवल भावनात्मक प्राणी ही नहीं है जो इन्द्रियों व भावनाओं और भावनाओं को संतुष्ट करना ही जीवन का मूलोद्देश्य नहीं मानता है। इस कारण सुखवाद एकांगी सिद्धान्त हो जाता है तथा यह मानव मनुष्य को संतुष्ट करने में सक्षम नहीं हो पाता है।

दूसरी तरफ बुद्धिवाद या कठोरतावाद बौद्धिक नियमों अथवा विवेक के आदर्शों को ही मानव जीवन के आदर्श के रूप में स्थापित करता है। अर्थात् विवेक के आदर्शों के द्वारा मान्य कर्म नैतिक रूप से उचित हैं तथा उसके विपरीत कार्य अनुचित हैं। इस प्रकार बुद्धिवादी कठोरतापूर्वक विवेक के द्वारा मनुष्य की भावनाओं को नियंत्रित करने का सिद्धान्त है जिसे सभी मनुष्यों के लिए स्वीकार करना सहज नहीं है। यह सत्य है कि मनुष्य के अन्दर विवेक की प्रधानता है परन्तु यह भी सत्य है कि मनुष्य भावनाओं का पूर्णतः परित्याग नहीं कर सकता। अतः कठोरतावाद भी मनुष्य के जीवन के एक ही पक्ष की व्याख्या करने में सक्षम है।

आत्मपूर्णतावाद इन दो extreme

के बीच समन्वय का प्रयास करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार आत्मा की पूर्णता उसके विवेकयुक्त कर्म के सम्पादन में है जिसमें भावनाओं का समन्वय आवश्यक है। जब बुद्धि के नियंत्रण में भावनाओं को स्वतंत्र किया जाएगा तभी आत्मसिद्धि की प्राप्ति हो सकती है। इस तरह आत्मपूर्णतावादी दार्शनिक मध्यमार्ग का अनुसरण करते हैं जिसमें दो extremes के स्थान पर उसके मध्य के मार्ग को अनुसार अपने अपनाने को ही जीवन का चरम लक्ष्य माना जाता है।

आत्मपूर्णतावादी सिद्धान्त बुद्धि से भावना दोनों की व्याख्या करने में सक्षम है क्योंकि मनुष्य का सम्पूर्ण कल्याण उसकी आत्मसिद्धियों की प्राप्ति में ही है। इसकी सम्पुष्टि आत्मपूर्णतावाद शब्द की व्युत्पत्ति से होती है। आत्मपूर्णतावाद का अंग्रेजी अनुवाद perfectionism ~~Eudaemonism~~ है। जिसकी व्युत्पत्ति ग्रीक शब्द Eudaemonism से हुई है। इसका अर्थ होता है आत्म-कल्याण। यह आत्म-कल्याण ही आत्म-पूर्णता है। आत्मपूर्णतावादी व्यक्ति के यथार्थ कल्याण उसके व्यक्तित्व के पूर्ण कल्याण या विकास में निहित है। व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास भावना और बुद्धि दोनों के समुचित विकास में है। आत्मपूर्णतावादी दार्शनिक इसे सिद्ध करने के लिए कहते हैं कि man is a rational animal। यहाँ मनुष्य के ~~मानव~~ पाशविक और बौद्धिक दोनों स्वरूप को स्वीकार किया गया है। अतः मनुष्य का सम्पूर्ण विकास उसके बौद्धिक एवं पाशविक प्रवृत्तियों को संतुष्ट करने में निहित है। इस कारण

से बुद्धि में है। मानव का इसी में मानव का कल्याण तथा इसके व्यक्तित्व की सार्थकता तथा सफलता निहित है। इस तरह स्पष्ट है कि आत्मपूर्णतावाद मानव जीवन में विवेक या बुद्धि के साथ-2 भावनाओं को भी उचित महत्व प्रदान करता है।

आत्मपूर्णतावाद के समर्थक दार्शनिकों में हेगेल, ब्रैडले तथा ग्रीन आदि शामिल हैं। हेगेल का सिद्धान्त है। 'Die to Live', 'Be a person' (जीने के लिए मरो) तथा (व्यक्ति बनो)। हेगेल स्वीकार करते हैं कि विवेक से वासनाओं को नियंत्रित करना ही पूर्णता का आदर्श है। इस कारण इनके दर्शन को आदर्शवाद भी कहा गया है। ब्रैडले हेगेल की प्रसिद्ध उक्ति 'जीने के लिए मरो' का अर्थ है आत्मा की रक्षा के लिए भौतिक शरीर का बलिदान आवश्यक है क्योंकि जब तक मनुष्य वासनाओं से स्वयं को मुक्त नहीं करता तब तक आत्मा के सच्चे स्वरूप की उपलब्धि संभव नहीं है। यह उपलब्धि विवेक के द्वारा वासनाओं के नियंत्रण से संभव है।

आत्मपूर्णतावाद की विशेषताएं —

आत्मपूर्णतावाद का सिद्धान्त व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास से संबंधित है जिसमें वासना और विवेक दोनों समाहित हैं। दोनों का समन्वय ही व्यक्ति को पूर्ण बनाता है। अतः इनमें से किसी एक को वरीयता देना अनुचित होगा। हमें न तो सिर्फ भावनाओं या बुद्धि के वशीभूत होकर अपने कर्मों का सम्पादन

| आत्म-
पूर्णतावाद के अनुसार व्यक्ति एवं समाज में अवयव-अवयवी या अंग-अंगी भाव का संबंध है। जिस प्रकार शरीर के बिना किसी अंग का महत्व नहीं है, उसी प्रकार समाज के बिना व्यक्ति महत्वहीन है। समाज कल्याण में ही व्यक्ति का कल्याण निहित है। सच्चा सुख परोपकार, सहानुभूति आदि गुणों से ही प्राप्त होता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को दूसरों के हितों को ध्यान में रखकर ही कर्म में प्रवृत्त होना चाहिए। सामाजिक कल्याण में व्यक्ति का कल्याण स्वतः ही निहित है। अपने हितों को ध्यान रखकर कार्य करने से व्यक्ति अपने पूर्ण लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। यह तभी संभव है जब व्यक्ति दूसरों के हितों को अपनी कार्य सूची में प्राथमिकता दे। वस्तुतः सामूहिक स्वार्थ में ही व्यक्तिगत स्वार्थ समाहित है। अतः सामूहिक कार्य करके ही व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। आत्मपूर्णता सामाजिक हित में है।

आत्मपूर्णतावाद के अनुसार सर्वोच्च शुभ आत्मसिद्धि है। यह आत्मसिद्धि सभी प्रकार की शक्तियों का विकास करने से संभव है। शारीरिक, बौद्धिक आदि शक्तियों से भौतिक एवं आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। बहुमुखी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए बहुमुखी प्रतिभा अपेक्षित है। यह सभी शक्तियों के विकास से ही सुलभ हो सकता है। अतः समस्त शक्तियों का विकास ही आत्मसिद्धि है, इससे ही आत्म-संतोष प्राप्त होता है। वस्तुतः सभी शक्तियों को प्राप्त करना संभव नहीं है। इसके विपरीत अपने लक्ष्य को स्थिर कर उसकी प्राप्ति के लिए समस्त शक्तियों को लगाना चाहिए। इस

आदर्श का अनुसरण कर जीवन को सफल बनाया जा सकता है।

(4.) आत्मपूर्णतावाद स्वार्थवाद एवं परार्थवाद का समन्वय करता है। स्वार्थवाद जहाँ व्यक्ति के निजी सुख को प्राथमिकता देता है वहीं परार्थवाद सामाजिक सुख को वांछनीय मानता है। यह मानता है कि व्यक्ति को वही कार्य करना चाहिए जिससे सामाजिक स्वार्थ की सिद्धि हो। पूर्णतावाद इन दोनों सिद्धान्तों का समन्वय करता है। इन सिद्धान्त के समर्थक सामाजिक स्वार्थ में ही व्यक्ति के निजी स्वार्थ को स्वीकार करते हैं। सामाजिक कल्याण से ही व्यक्ति का कल्याण सम्भव है। ब्रैडले इस मत से सहमति व्यक्त करते हैं कि व्यक्ति का व्यक्तित्व समाज से अलग नहीं वरन् उसी में समाहित है। प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व सामाजिक व्यक्तित्व का एक अंश है।

(5) पूर्णतावाद सुखवाद एवं बुद्धिवाद का समन्वय करता है। सुखवाद सुख को ही मानव जीवन का एकमात्र लक्ष्य निर्धारित करता है। जिस कार्य से सुख की प्राप्ति हो उसे करने के लिए यह व्यक्ति को अभिप्रेरित करता है तथा उसे ही उचित मानता है। सुखवाद मानव को भावना प्रधान मानता है। भावनाओं का सुखों के प्रति स्वाभाविक रूप से आग्रह होता है। इसके विपरीत बुद्धिवाद मानव को विवेक प्रधान मानता है। विवेक का आदेश भावनाओं का पूर्णतः दमन है। भावनाएं अबौद्धिक हैं, अतः इनका पूर्ण दमन ही नैतिकता है। इस प्रकार ये दोनों सिद्धान्त नितान्त विरोधी हैं। पूर्णतावाद इनके बीच समन्वय स्थापित करता है। भावनाओं के द्वारा ही कार्य संपादित होते हैं। ये नैतिकता की सामग्री प्रस्तुत करती हैं। इस प्रकार नैतिकता के लिए दोनों आवश्यक हैं। आत्मपूर्णतावाद के अनुसार भावनाओं को बुद्धि के द्वारा नियंत्रित होना चाहिए। तभी व्यक्ति के समग्र कल्याण का मार्ग

को ... में ... श्रेष्ठ सिद्धान्त माना है।
इस सिद्धान्त का सबसे बड़ा गुण यह है कि यह स्वार्थ व परार्थ, व्यक्तिगत हित और सामाजिक हित में समन्वय स्थापित करता है। स्वभावतः व्यक्ति स्वार्थी होता है जिसमें वह अपने निजी हित की इच्छा रखता है परन्तु स्वयं भी मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इसलिए वह जानता है कि व्यक्ति का कल्याण समाज में रहकर ही संभव है। समाज की तुलना एक शरीर से की गई है जिसमें व्यक्ति उसका अंग है। मनुष्य के अंग को स्वस्थ रहने के लिए उसके शरीर का स्वस्थ रहना परम आवश्यक है क्योंकि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ अंग निवास करता है। इस कारण आत्मपूर्णतावादी मानते हैं कि व्यक्ति को समाज के कल्याण के निमित्त ही कोई कार्य करना चाहिए जिससे व्यक्ति और समाज दोनों का कल्याण हो सके।
इसके बावजूद आत्मपूर्णतावाद में कुछ दोष भी हैं, जो निम्न हैं —

1) आत्मपूर्णतावाद के अनुसार आत्मसिद्धि को नैतिकता के उद्देश्य के रूप में स्वीकार किया गया है। यह आत्मसिद्धि व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास द्वारा ही संभव है जो बुद्धि द्वारा इच्छाओं के नियंत्रण से संभव है। परन्तु पूर्णतावादी आत्मसिद्धि को पूर्ण रूप से परिभाषित नहीं कर पाए हैं।

2) आत्मपूर्णतावाद का मानना है कि व्यक्ति का पूर्ण विकास समाज में ही संभव है। अतः मनुष्य को कोई कार्य सामाजिक

सम्भव नहीं है। यह सिद्धान्त सैद्धान्तिक तो हो सकता है परन्तु व्यवहारिक नहीं।

(4) इस सिद्धान्त में व्यक्ति के द्वन्द्व में उठनेवाले अंतर्द्वन्द्व की भी समुचित व्याख्या नहीं की गई है। यदि व्यक्ति किसी द्वन्द्व में फँस जाए तो उसे किस निर्णय का चुनाव करना चाहिए, इसे स्पष्ट नहीं किया गया है।

(5.) कुछ विद्वानों के अनुसार आत्मपूर्णतावाद एक स्वार्थी सिद्धान्त है, अगर कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के पूर्ण विकास में लगा रहेगा तो उसे स्वार्थी ही कहा जाएगा। परन्तु इसके उत्तर में आत्मपूर्णतावादियों का मानना है कि व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास सामाजिक हित में भी है। परन्तु वास्तविकता यह है कि सामाजिक हित का कार्य करनेवाले व्यक्ति अपने व्यक्तित्व विकास के लिए कुछ नहीं कर पाते।

निष्कर्षतः उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट है कि अन्य सिद्धान्तों की अपेक्षा आत्मपूर्णतावाद नैतिक निर्णय के मापदंड के रूप में अधिक श्रेयस्कर है क्योंकि यह बुद्धि के नियंत्रण में भावनाओं की उचित तृप्ति का एक सिद्धान्त है जो मध्यम मार्ग को बताता है। अतः मध्यम मार्ग ही extreme की अपेक्षा अधिक उपयुक्त सिद्धान्त के रूप में स्वीकार्य है।